WWJMRD 2020; 6(7): 5-8
www.wwjmrd.com
International Journal
Peer Reviewed Journal
Refereed Journal
Indexed Journal
Impact Factor MJIF: 4.25
E-ISSN: 2454-6615

नवीन सिंह
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, भारत

Correspondence:
नवीन सिंह
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, भारत

'अपवित्र आख्यान' उपन्यास का संवेदना पक्ष

नवीन सिंह

सारांश
उपन्यास 'अपवित्र आख्यान' का शीर्षक ही इस बात का द्योतक है कि समाज में कुछ 'पवित्र' है और कुछ 'अपवित्र'। इन्हीं दो तत्वों के आधार पर समाज में विभाजन की शुरूआत हो जाती है जिसके बाद अंतर्द्वंद्व की स्थिति पैदा होती है। हिंदू के लिए मुसलमान अपवित्र है, म्लेच्छ है तो मुसलमान के लिए हिंदू 'काफिर'। धर्म, जाति, लिंग, भाषा व अन्य सामाजिक उपकरणों (तत्वों) ने आज 'मनुष्य' की पहचान को धूमिल कर दिया है। हम हिंदू होते हैं, या मुसलमान होते हैं, हम ब्राह्मण होते हैं या दलित होते हैं, हम पुरुष होते हैं या स्त्री होते हैं, हम हिंदुस्तानी होते हैं या पाकिस्तानी होते हैं और हिंदी भाषी होते हैं या उर्दू भाषी होते हैं लेकिन इन सबके बीच 'इंसान' होना भूल जाते हैं। इन्हीं अंतर्द्वंद्वों को बहुत ही कलात्मकता के साथ उपन्यास में ढालने की कोशिश की है उपन्यासकार अब्दुल बिस्मिल्लाह ने, जिसकी पहचान इस शोध आलेख में की गयी है।

मूलशब्द: सांप्रदायीकरण, संस्कृति, धर्मनिरपेक्षता इत्यादि।

प्रस्तावना

अब्दुल बिस्मिल्लाह उन चंद भारतीय लेखकों में से हैं जिन्होंने देश की साझी संस्कृति को काफी करीब से देखा व जिया और उसे अपने कथा साहित्य का विषय बनाया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह कृत 'अपवित्र आख्यान' उपन्यास हिंदू-मुस्लिम रिश्ते की खटास-मिठास व समय की तिक्तताओं और विरोधाभासों का भी सूक्ष्म चित्रण करता है। इस उपन्यास का सृजन आधुनिक भाषा चिंतन के अनुरूप हुआ है। लेखक जीवन के कटु अनुभवों से उपजी हुई स्मृतियों व यथार्थ को गहरी संवेदना देने में समर्थ हुआ है। रचनाकार उपन्यास के प्रारंभ होने से पूर्व ही साहिर लुधियानवी का एक शे'र लिखकर अपने अनुभवजनित रचना की प्रामाणिकता को सूचित करता है-

'दुनिया ने तजुर्बातो- हवादिस की शक्ल में
जो कुछ मुझे दिया है लौटा रहा हूँ मैं।'

इसके साथ ही लेखक कथानक के संबंध में स्वयं वक्तव्य देता है जिससे एक बात स्पष्ट होती है कि ये कथा किसी एक व्यक्ति या शहर की नहीं बल्कि व्यक्ति चरित्र या शहर के माध्यम से पूरे समाज व राष्ट्र का चरित्र स्पष्ट हो जाता है। लेखक कहता है- "जमील ने शहर छोड़ दिया। वह दूसरे शहर में जाकर रहने लगा। शहर सब करीब-करीब एक जैसे होते हैं- जैसे गांव- इसलिए नाम से कोई फर्क नहीं पड़ता। उस शहर में भी अन्य शहरों की तरह एक रेलवे स्टेशन था, एक बस अड्डा था, एक मुस्लिम मुसाफिरखाना और एक धर्मशाला, तीन सिनेमा हॉल, एक मुहल्ला वेश्याओं का, एक सब्जी मंडी, एक केंद्रीय बाजार-महंगा, कुछ रिहाइशी इलाके, कुछ पार्क... आदि।''

इस लेखकीय वक्तव्य से स्पष्ट है कि पाठक इसे किसी भी तरीके से पढ़ सकता है। लेखक जिन समस्याओं की ओर संकेत करता है वे किसी एक गांव, शहर या समाज की नहीं बल्कि सार्वभौमिक समस्याएं हैं लेखक ने स्पष्ट संकेत नहीं दिया है कि कथा किस गांव या शहर की है किंतु भाषा व कुछेक संकेतों से स्पष्ट होता है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसी शहर और उसके आस-पास की है। लेखक हिंदू-मुस्लिम दोनों समुदायों की सांस्कृतिक समानताओं व असमानताओं से परिचित है किंतु मुस्लिम समाज से अधिक परिचित है। इसलिए

वह उसकी बात अधिक करता है।

इस उपन्यास की कथा विभिन्न घटनाओं का समुच्चय है। कोई भी घटना अधिक देर तक नहीं रहती। प्रत्येक घटना एक निश्चित समस्या व उद्देश्य लेकर प्रकट होती है। लेखक समस्या व उसके प्रति समाज का दृष्टिकोण स्पष्ट करता हुआ दृश्य समाप्त करता है। इस कथाक्रम में पाठक लगातार दर्शक की भांति उपस्थित रहता है। लेखक भी कथा से दूर नहीं रहता वह भी पात्रों के मनोभावों से जुड़कर कथा में उपस्थित रहता है।

'अपवित्र आख्यान' की कथा मुख्य पात्र जमील और उसकी सहपाठी यासमीन के साथ शुरू होती है। दोनों पहली बार एक साथ रिक्शे पर बैठते हैं। जमील पहली बार यासमीन के घर जा रहा होता है। रिक्शा जैसे ही यासमीन के घर के पास वाली गली में पहुंचता है यासमीन पर्स से नकाब निकालकर पहनने लगती है। इसे देखकर जमील आश्चर्यचकित होता है। उसे विश्वास ही नहीं होता कि यासमीन उच्च शिक्षा में होने के बावजूद इतनी रूढ़िवादी है। इसके लिए लेखक ने प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया है-

''रिक्शा जैसे ही चौड़ी सड़क को पार करके संकरी सड़क पर पहुंचा, यासमीन ने अपना पर्स खोला और नकाब निकालकर जल्दी-जल्दी उसे पहनने लगी।''

यहां पर चौड़ी सड़क को पार कर संकरी गली में पहुंचना मुस्लिम समाज में व्याप्त धार्मिक संकीर्णता की ओर संकेत करता है। जमील कहीं भी ईमानदारी के साथ सही बात बोल देता है चाहे वह कड़वी ही क्यों न हो? जमील जब यासमीन से पूछता है कि तुम भी नकाब ओढ़ती हो, तब यासमीन कहती है कि ये उसकी तहजीब का हिस्सा है। धर्म के नाम पर स्त्रियों को बांधकर रखने की प्रवृत्ति को जमील भली-भांति समझता है। वह बेहिचक कहता है- "यह तुम्हारी तहजीब है, या डर?"

नकाब के संबंध में लेखिका तसलीमा नसरीन कहती हैं- ''स्त्रियों को बुर्का पहनाने का अर्थ है कि स्त्रियां लोभ लालच की चीज है। वे उपभोग की वस्तु हैं, उनके शरीर का कोई भी अंग यदि पुरुष देखता है तो उसकी यौनकामना आग की तरह धू-धू कर जल उठती है, लोभ-लालच की बाढ़ उमड़ आती है और बिना बलात्कार किए उसे शांति नहीं मिलती। पुरुषों की इस यौन समस्या के कारण स्त्रियों को आपादमस्तक ढककर रखना होगा। यही है सातवीं सदी में जन्म लेने वाले इस्लाम का आदेश।''

जमील किसी भी प्रकार की रूढ़ियों को बर्दाश्त नहीं करता है चाहे वह किसी भी धर्म की क्यों न हों। इसीलिए वह नकाब को लेकर अपना प्रतिरोध दर्ज कराता है। घर से थोड़ी दूर पहले ही यासमीन रिक्शे से उतर जाती है और जमील को थोड़ी देर बाद घर आने के लिए कहती है। उसे यह भय होता है कि कहीं उसके अब्बू या बड़े भैया दोनों एक साथ न देख लें। समाज में स्त्री-पुरुष को एक मित्र की भांति अभी भी स्वीकार्यता नहीं मिल पायी है। जमील यासमीन के घर पहुंचता है वहां पर उसके अब्बू से मिलता है जो उसे हिंदी के बजाय उर्दू में लिखने के लिए उकसाते हैं। उनका मानना है कि उर्दू मुसलमानों की मादरी जबान है। यहां पर लेखक ने भाषा का द्वंद्व दिखाया है। किस प्रकार समाज में हिंदू व मुसलमान की भाषा को क्रमशः हिंदी व उर्दू की पहचान के रूप में रूढ़ किया जा रहा है।

भाषा संस्कृति का महत्वपूर्ण पक्ष है। भाषा की उत्पत्ति के साथ ही मानव जाति का सांस्कृतिक विकास हुआ है। समान भाषा-बोली में व्यवहार करनेवालों की रूचियों-स्वभाव आदि की भाव-भूमि एक ही होती है। लेकिन सांप्रदायिक लोग भाषा को धर्म के आधार पर पहचान देकर उसका सांप्रदायीकरण करने की कुचेष्टा करते रहते हैं। जमील को यासमीन के भाई डॉ. सादिक कहते हैं कि वह चाहे कुछ भी कर ले लेकिन रहेगा म्लेच्छ ही। यासमीन का परिवार शिक्षित और संपन्न है, उन्हें मुसलमान बने रहने में ही फायदा है। इसलिए वे जमील को भी मुसलमान बने रहने की हिदायत देते रहते हैं। हिन्दी - उर्दू का विवाद कोई एक दिन का मसला नहीं है बल्कि इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है, इस संबंध में आलोचक वीरभारत तलवार कहते हैं कि "एक ही खड़ी बोली पर आधारित आधुनिक हिन्दी-उर्दू के बीच कि दूरी दरअसल एक ही प्रांत में रहते हुए भी हिन्दू-मुस्लिम भद्रवर्ग के बीच जो अलगाव की भावना है, उसे प्रतिबंधित करती है। अलगाव पर ज़ोर देने वाले दृष्टिकोण को और उससे पैदा होने वाले भाषाई शुद्धता के आग्रह को छोडकर, सांझे प्रतिकों को अपनाए बिना उनमें एक जातीयता की भावना का विकास नामुमकिन है।"

जमील मुसलमान होकर भी हिंदी और संस्कृत पढ़ता है क्योंकि वह भाषा को किसी धर्म का नहीं मानता बल्कि उसका विश्वास है कि भाषा उसी की है जो उसका व्यवहार करे। समाज में किस प्रकार भाषा को एक धर्म के साथ जोड़ दिया जाता है? कैसे कोई भाषा और कोई पुस्तक पवित्र और अपवित्र हो जाती है? जमील इन विचारों को लेकर अकसर परेशान हो जाता था। जमील को कारण भी पता होता है कि बहुत पहले मुसलमान बाहर से इस देश में आए थे। उनका रहन-सहन और भाषा व्यवहार अलग था। उन्हें यहां के तथाकथित उच्च जाति के लोग म्लेच्छ मानते थे। हिंदू से मुसलमान बनने वालों में ज्यादातर तथाकथित निम्न जाति के लोग थे जिन्हें हिंदू धर्म में 'अछूत' माना जाता था। इसलिए मुसलमानों के साथ भी अछूतों जैसा व्यवहार किया जाने लगा। शायद इसीलिए सुंदरम शांडिल्य ने इस उपन्यास के संबंध में कहा कि ''यह उपन्यास एक मुसलमान के 'अपवित्र' होने की इसी पीड़ा का आख्यान है।''

शिक्षा जगत में होने वाले भ्रष्टाचार को भी लेखक ने बहुत ही बारीकी से दर्शाया है। राष्ट्रीय समानता महाविद्यालय में जाने पर जमील के साथ जो भेदभाव होता है वह आज के उच्च शिक्षा संस्थानों की कारगुजारी को जाहिर करता है। प्रो. चतुर्वेदी द्वारा जमील को मुसलमान होने के नाते यह सलाह देना कि ''कभी शिब्ली कॉलेज, आजमगढ़, हलीम कॉलेज कानपुर या फिर अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी में जगह निकले तो अवश्य आवेदन करना, उस समय मैं जितनी सहायता कर सकूंगा, करूंगा।'' इससे स्पष्ट होता है कि यदि मुसलमान छात्र है तो उसके लिए मुस्लिम युनिवर्सिटी में ही जगह मिल सकती है। एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में इस प्रकार की मानसिकता समाज को पंगु बनाने का कार्य करती है। प्रो. चतुर्वेदी के कथन से दूसरी बात यह भी निकल कर आती है कि उच्च शिक्षा में चाहे पी-एच.डी. में प्रवेश पाना हो या शिक्षक के रूप में नियुक्त होना हो, दोनों जगह सिफारिश का बोलबाला है, योग्यता को गौण कर दिया जाता

है। शिक्षा की गुणवत्ता और विश्वविद्यालय की संस्कृति का निर्धारण शिक्षकों की गुणवत्ता व मूल्य-व्यवस्था पर ही निर्भर रहती है।

सुंदरम शांडिल्य अपने लेख 'अपवित्र होने की पीड़ा का आख्यान' में लिखते हैं कि ''सवाल यह है कि यदि मुसलमान विदेशी या आतंकवादी नहीं है तो आजादी के 68 साल बाद भी देश का मुसलमान अपनी पहचान बताने में संकोच क्यों करता है?'' उपन्यास का पात्र इकबाल अहमद जिस 'भाग्य विधाता' अखबार में काम करता है वहां पर हिंदुओं का वर्चस्व है। अपमान व उपेक्षा से बचने के लिए वह इकबाल अहमद से इकबाल बहादुर राय बनता है। लेकिन शहर के मुहल्ले भी हिंदू व मुसलमान मुहल्ले में बंटे होते हैं। हिंदू-मुहल्ले में उसे शक की निगाह से देखा जाता है और मुसलमान मुहल्ला उसे मुसलमान नहीं मानता। इकबाल का कटु अनुभव होता है कि अखबार में हिंदू त्योहारों के विवरण छपते हैं लेकिन मुसलमानों के त्योहारों को रद्दी की टोकरी में डाल दिया जाता है। दंगे की खबर इस प्रकार छापी जाती है कि मुसलमान ही दंगाई साबित हों। इकबाल इस प्रकार के भेदभावों से दुखी हैं किंतु वह कुछ भी कर पान में स्वयं को असमर्थ पाता है। अपनी पहचान बदलने का नतीजा यह होता है कि मुस्लिम मुहल्ले में दंगे की रिपोटिंग करते समय उसे हिंदू समझकर मार दिया जाता है। लेखक ने इकबाल की हत्या के माध्यम से समाज के भीतर हो रही मानवीय संवेदनाओं की हत्या की ओर संकेत किया है। रामधारी सिंह 'दिनकर' सांप्रदायिकता की पहचान करते हुए लिखते हैं कि "...सांप्रदायिकता संक्रामक रोग है। जब एक जाति, भयानक रूप से, सांप्रदायिक हो उठती है, तब दूसरी जाति भी अपने अस्तित्व का ध्यान करने लगती है और उसके भी भाव शुद्ध नहीं रह पाते।"

देश में शिक्षा की स्थिति को भी लेखक ने बखूबी चित्रित किया है। माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति को लेखक ने इंटर कॉलेज के सभी शिक्षकों के संक्षिप्त विवरण के माध्यम से उजागर किया है। शिक्षकों के चरित्र के माध्यम से पूरे शिक्षा जगत के चरित्र को उजागर करने का प्रयास लेखक ने किया है। मौलवी फैयाजुद्दीन मिडिल स्कूल का नाम बदलकर 'महात्मा गांधी मिडिल स्कूल' रखना और थोड़ी बहुत रिश्वत के बाद मान्यता मिल जाना एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के लिए प्रश्नचिह्न खड़ा करता है। शिक्षा जगत के साथ ही सरकारी तंत्र की खामियों को भी दिखाने की कोशिश की गयी है। इंटर कॉलेज के प्रिंसिपल भी मुसलमान हैं क्योंकि इसके प्रबंधक चाहते थे कि ''उनके कॉलेज में एक भी काफिर न आए।'' प्रिंसिपल साहब सुविधा शुल्क लेकर बोर्ड की परीक्षाओं में नकल कराते थे ताकि विद्यार्थी गुंडागर्दी न करें ये अराजकता को मिटाने के बजाए दूसरी अराजकता पैदा करने की व्यवस्था को दर्शाता है। सज्जाद साहब अंग्रेजी के लेक्चरर थे फिर भी कक्षा की शुरूआत फातेहा पढ़कर करते थे। कुछ अध्यापक ऐसे भी थे जिनका शिक्षा से कोई मतलब नहीं होता बल्कि वे तो शिक्षा को एक व्यवसाय के रूप में देखते हैं। सिद्दीकी साहब जैसे कुछ अध्यापक अपनी जाति पर गर्व करते हैं और तथाकथित नीची जाति के छात्रों को हिकारत भरी नजरों से देखते हैं। इस प्रकार के भेदभाव व शिक्षा जगत में होने वाले भ्रष्टाचार को लेखक ने बखूबी दर्शाया है।

उच्च शिक्षण संस्थानों में भी स्थिति ठीक नहीं है। विश्वविद्यालयों के भीतर अभी भी सामंतवादी प्रवृत्तियां पल रही हैं। उपन्यास 'अपवित्र आख्यान' में प्रो. रामकुमार चतुर्वेदी जो विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष हैं। इन्होंने कई महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में नियुक्तियां करायी हैं। नकवी साहब जैसे नेता नियुक्ति प्रक्रिया में हस्तक्षेप करते हैं। ऐसी स्थिति में एक जमील जैसा योग्य व कुशल शिक्षक विश्वविद्यालय में न पहुंचकर एक इंटर कॉलेज में पढ़ाता है। यासमीन जो कि जमील से कम योग्यता रखती है नेता की पैरवी से विश्वविद्यालय में शिक्षिका बन जाती है। प्रो. चतुर्वेदी अपने रिश्तेदारों को नियुक्त कराते हैं। प्रो. चतुर्वेदी व यासमीन दोनों ही अपनी-अपनी संस्कृति के वर्चस्व को बनाए रखने की कोशिश करते हैं। यासमीन जब "भारतीय मुसलमानों के रीति-रिवाज" नामक पुस्तक लिखती है तब उसमें केवल उन्हीं बातों का जिक्र करती है जिसमें मुसलमानों पर हिंदू संस्कृति का प्रभाव न दिखता हो। जबकि बहुत से ऐसे त्योहार व परंपराएं हैं जिसमें हिंदू-मुस्लिम दोनों ही एक-दूसरे से प्रभावित हुए हैं। प्रो. चतुर्वेदी जब मुस्लिम महिला को शोध कराते हैं तो उसको विषय देते हैं- ''हिंदी के मुसलमान कवियों पर हिंदी आस्थाओं का प्रभाव।'' विश्वविद्यालयों में जब इस प्रकार के सांस्कृतिक वर्चस्व की लड़ाई चलती रहेगी तो समाज के भीतर किस प्रकार के सकारात्मक बदलाव की उम्मीद की जा सकती है।?

आम हिंदू मानस में भारतीय मुसलमानों की छवि धार्मिक रूप से कट्टर, जनसंख्या बढ़ाने वाले, भारत विभाजन के जिम्मेदार, गंदगी में रहने वाले, हज सब्सिडी पाने वाले, सरकार के सभी संसाधनों का दोहन करने वाले रूप में ही बनी हुई है। इस छवि के निर्माण में परंपरागत हिंदी मीडिया की भी बड़ी भूमिका है। आज मीडिया व पत्रकारिता के स्तर में भी गिरावट हुई है। जो पत्रकार ईमानदारी के साथ सच्चाई उजागर करता है उसकी सुरक्षा के लिए कोई इंतजाम नहीं है। उपन्यास में इकबाल अहमद के साथ यही होता है। मुसलमानों की छवि को रूढ़िवादी, कट्टर रूप में गढ़ने के लिए रामप्रसाद 'हठी' जैसे संपादक आगे रहते हैं। इनका मानना है कि- ''धार्मिक मामलों में मुसलमान बहुत कट्टर होते हैं।'' और ''मुसलमानों में उतनी सहिष्णुता नहीं होती, जितनी औरों में होती है।'' इस प्रकार, ये संपादक महोदय मुसलमानों के ऊपर विशेषांक तो निकालना चाहते हैं किंतु इनकी मंशा उनकी समस्याओं को उजागर कर उसका समाधान ढूंढ़ने की नहीं बल्कि मुस्लिमों की छवि को एक निश्चित सांचे में ढ़ालने की होती है। जबकि उपन्यास का मुख्य पात्र जमील इनको बताता है कि हिंदू-मुसलमान गांवों में एक-साथ रहते हैं और उनकी समस्याएं भी एक जैसी ही हैं।

हिन्दू और मुसलमान ही नहीं बल्कि दुनियाभर के समुदायों में एक-दूसरे से श्रेष्ठता का भाव चलता रहता है किन्तु उनमें समन्वय बनाए रखना ही तो हमारी संस्कृति कि पहचान रही है जिसे सामासिक संस्कृति कहते हैं। अल-बिरुनी ने अपनी पुस्तक 'भारत'(अनूदित नाम) में लिखा है कि "...आचार-व्यवहार और रीति-रिवाजों में उनमें और हममें इतना अधिक भेद है कि वे हमारी भेष-भूषा, तौर-तरीकों और रिवाजों से अपने बच्चों को डराते हैं, यहाँ तक कि हमें राक्षस की संतान बताते हैं और हमारे कार्यकलाप को बुरा और अनुचित

मानते हैं। लगे हाथों यह स्वीकार करना भी न्यायोचित है कि विजातियों के प्रति इसी प्रकार का निंदा-भाव हममें और हिंदुओं में ही नहीं वरन सभी जातियों में एक-दूसरे के प्रति यही भावना पायी जाति है,,,"

जमील के संपर्क में आए बहुतेरे व्यक्तियों में से सात व्यक्ति उसकी खामियां गिनाते हुए उसके आचार-विचार एवं जीवन-शैली की आलोचना करते हैं। अपने-अपने ढंग से सभी उसके भविष्य को लेकर चिंता जाहिर करते हैं तथा हिदायत भी देते हैं। जो उसके मुस्लिम हितैषी होते हैं वे उसके मुसलमान बने रहने की सलाह देते हैं। उनका तर्क होता है कि मुसलमान बने रहने में रहने की सलाह देते हैं। उनका तर्क होता है कि मुसलमान बने रहने में ही जमील की इज्जत और हिमायत दोनों है। जबकि हिंदू शुभचिंतक उसे हिंदू बनाने पर आमादा होते हैं। प्रिंसिपल साहब जमील को पत्र में लिखते हैं कि उसने देवी देवताओं के पूजा-पाठ में शामिल होकर इस्लाम धर्म का अपमान किया है जो कि कॉलेज की पॉलिसी के हिसाब से जुर्म है। असहिष्णुता की स्थिति पैदा करने वाले तत्वों की पहचान लेखक ने पत्रों के माध्यम से की है। विभा अहमद जो कि धर्मपरिवर्तन करके मुसलमान बनती है वह भी जमील को सलाह देती है कि शराब पीना इस्लाम में हराम है। जबकि ये बात उन्होंने कुरआन में न पढ़कर अपने पति के मुख से सुनी होती है। राष्ट्रीय कवि सम्मेलन के संयोजक जमील को उर्दू के शब्दों का इस्तेमाल करने से रोकते हैं। उनका तर्क यह है कि ये विदेशी भाषा है। यही धारणा ओमप्रकाश गुप्ता और रामप्रसाद 'हठी' जी की भी होती है। इस प्रकार की मानसिकता के लोग उर्दू व मुसलमानों के प्रति एक पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर जीते हैं तभी जमील के हिंदी के प्रति समर्पण व निष्ठा भाव होने के बावजूद महज मुसलमान होने के कारण लांक्षित किया जाता है। यासमीन भी पत्र के माध्यम से जमील के स्वतंत्र व प्रगतिशील विचारों की आलोचना करती है। सभी से प्राप्त पत्रों को जमील एक लिफाफे में रखता जाता है और एक दिन अपनी पत्नी राबिया देवी को किसी नदी, तालाद या कुएं में डालने को कहता है। राबिया मस्जिद के बगल के कुएं में पत्रों को डाल आती है और जमील को बताती है कि पत्रों को कुएं में डालने के बाद उसे दुआ पढ़ी- "इन्ना लिल्लाहे व इन्ना इलैहे राजेऊन'' जो किसी के मरने के बाद पढ़ी जाती है।

जमील सोचता है कि जिन पत्रों को उसने 'पवित्र' मानकर कुएं में बहा दिया, पानी में रहते-रहते उनके शब्द तो एक दिन मिट जाएंगे, उन्हें लिखने वाले भी एक दिन मर जाएंगे लेकिन क्या उन शब्दों के पीछे छिपे 'अपवित्र' अर्थ भी उसके साथ समाप्त होंगे? समाज में पवित्रता व अपवित्रता के नाम पर कब तक बंटवारा होता रहेगा? लेखक ने इसलिए 'अपवित्र आख्यान' उपन्यास को 'पवित्र हृदयों' को समर्पित किया है। समाज में ये पवित्र हृदय रखने वाले लोग ही इस घृणा, द्वेष व कटुता जैसी अपवित्रताओं को समाप्त करेंगे। अंत में जमील अपनी पुत्री मुनिया की ओर उम्मीद भरी नज़रों से देखता है क्योंकि मुनिया मात्र बच्ची ही नहीं, नयी पीढ़ी का प्रतीक है जिस पर समाज का भविष्य टिका है। यही नयी पीढ़ी ही इस पवित्रता-अपवित्रता के भेद को मिटाकर इंसानियत को अपना आदर्श बनाएगी।

संदर्भ –

1. बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2012). अपवित्र आख्यान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-81-267-2193-1.
2. बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2012). अपवित्र आख्यान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-81-267-2193-1.
3. बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2012). अपवित्र आख्यान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-81-267-2193-1.
4. बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2012). अपवित्र आख्यान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-81-267-2193-1.
5. नसरीन, तसलीमा. (2016). कुछ गद्य कुछ पद्य. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-93-5229-464-0.
6. तलवार, वीरभारत. (2006). रस्साकशी. सारांश प्रकाशन: दिल्ली. दूसरा संस्करण
7. अहमद, एम. फिरोज़ (सं.).वाङ्मय (त्रैमासिक) (कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह अंक). अक्तूबर- दिसंबर. 2015. ISSN: 0975-8321.
8. बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2012). अपवित्र आख्यान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-81-267-2193-1.
9. अहमद, एम. फिरोज़ (सं.).वाङ्मय (त्रैमासिक) (कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह अंक). अक्तूबर- दिसंबर. 2015. ISSN: 0975-8321.
10. दिनकर, रामधारी सिंह. (1962).संस्कृति के चार अध्याय. उदयाचल प्रकाशन: पटना. तृतीय संकरण
11. बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2012). अपवित्र आख्यान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-81-267-2193-1.
12. बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2012). अपवित्र आख्यान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-81-267-2193-1.
13. बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2012). अपवित्र आख्यान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-81-267-2193-1.
14. बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2012). अपवित्र आख्यान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-81-267-2193-1.
15. बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2012). अपवित्र आख्यान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-81-267-2193-1.
16. अल-बिरुनी. (2013). भारत. नेशनल बूक ट्रस्ट, इंडिया: नई दिल्ली. आठवीं आवृत्ति. ISBN: 978-81-273-2110-1.
17. बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2012). अपवित्र आख्यान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-81-267-2193-1.